प्रवचन-२१०, गाथा-१८०, रविवार, मगसर कृष्ण १०, दिनांक १२-१२-१९७१

यह नियमसार, १८० गाथा। निर्वाण का स्वरूप है। मोक्ष हो गया, ऐसे जो सिद्ध भगवान वे कैसे हैं, उनका स्वरूप है। द्रव्य से तो आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है। यह बात समझाते हैं।

णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहो विम्हिओ ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१८०।।

इन्द्रिय जहाँ नहिं मोह नहिं, उपसर्ग, विस्मय भी नहीं।
निद्रा, क्षुधा, तृष्णा नहीं निर्वाण जानो रे वहीं॥१८०॥

टीका : यह, परम निर्वाण के... परम निर्वाण पर्याय प्राप्त **परमतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** आत्मा स्वयं ही परम निर्वाणस्वरूप ही है। भगवान आत्मा परम शान्त अविकारी निर्वाण शान्त पूर्णस्वरूप ही है। उसकी पर्याय में निर्वाण प्रगट होना, उसका नाम यहाँ निर्वाण और सिद्ध कहते हैं।

कैसा है परम तत्त्व? **अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण...** सिद्ध भगवान हैं, वे हैं तो असंख्य प्रदेशी, परन्तु अखण्ड-एक प्रदेश। सबके भेद नहीं करना। यहाँ अखण्ड एक प्रदेशी स्वरूप है। **अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण...** ज्ञान असंख्य प्रदेश में अखण्ड है न? समझ में आया? **अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण...** वैसे तो ज्ञानस्वरूप अखण्ड प्रदेशी है परन्तु उसे ऐसा न गिनकर, असंख्य हैं निश्चय से, ज्ञानस्वरूप असंख्य प्रदेश हैं निश्चय से, परन्तु उसे असंख्य को है अपेक्षा से निश्चय है परन्तु भेद की अपेक्षा से इसे-असंख्य को व्यवहार कहकर एक को निश्चय कहा जाता है। समझ में आया?

अखण्ड-एकप्रदेशी-... यह क्या कहना है? इन्द्रियाँ नहीं है, ऐसा कहना है? खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से जानना, वह प्रदेश का खण्ड-खण्ड होना, ऐसा उन्हें नहीं है। नीचे है। **अखण्ड-खण्डरहित अभिन्नप्रदेशी ज्ञान परमतत्त्व का स्वरूप है...** ऐसे तो असंख्य प्रदेश तो एक प्रदेशी कहा है। समझ में आया? आता है न पंचास्तिकाय में? जहाँ धर्मास्तिकाय का वर्णन किया है, वहाँ असंख्य प्रदेश होने पर भी एक प्रदेश (कहा है)।

असंख्य कहलाते हैं, इसलिए व्यवहार कहते हैं। अभिन्न एक प्रदेशी, वह निश्चय। दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि असंख्य प्रदेशी नियत प्रदेश है, निश्चय है। क्योंकि इतने ही हैं, कम-ज्यादा नहीं।

एक बार (संवत्) १९७९ के वर्ष में प्रश्न हुआ था। हंसराजभाई हैं न, हंसराजभाई? वे कहें, यह सब प्रदेश गिने हैं, वह तो कल्पना से गिने हैं। हंसराजभाई थे न? अमरेली। ....वे सुनने आये थे। वैसे तो... अमरेली जाना (था)। सामने आये थे। रास्ते में रेल आती है। पाटा। पाटा रास्ते में। वहाँ यह प्रश्न उठा, गाँव में जाते हुए सामने। असंख्य प्रदेशी भगवान ने कहा है, वह सब कल्पना है। कल्पना अर्थात् क्या? कहा। असंख्य प्रदेशी ही है। आकाश अनन्त प्रदेशी ही है। कल्पना से कहा है, ऐसा नहीं है। परन्तु उसे व्यवहार कहा है एक जगह, उसका कारण कि अभेद की एकपने की अपेक्षा से भेद को व्यवहार कहा है। समझ में आया? धर्मास्तिकाय में डाला है न? पंचास्तिकाय में। वहाँ व्यवहार डाला है। असंख्य प्रदेश कहना, वह व्यवहार है। एक प्रदेशी कहना, वह निश्चय है। वस्तु तो वस्तु है परन्तु असंख्य प्रदेश में ज्ञानस्वरूप व्याप्त है, तथापि उसे अखण्ड एक प्रदेशी ज्ञानस्वरूप, वह उसका निश्चय स्वभाव है। उसके कारण पाँच इन्द्रियाँ नहीं हैं। क्योंकि वे तो खण्ड-खण्ड होवे तो इन्द्रियाँ हो। इसलिए यह अखण्ड डालना पड़ा।

खण्ड-खण्ड भावइन्द्रिय है, वह सिद्ध को नहीं है। सिद्ध को तो नहीं है परन्तु आत्मा के स्वभाव में भी वास्तव में नहीं है। समझ में आया? ३१ गाथा में आया न? ३१, समयसार। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय से भिन्न चीज़ है। भावेन्द्रिय एक-एक इन्द्रिय के जानना, वह खण्ड ज्ञान है। जड़ वह तो है, वह तो अलग बात है। वाणी आदि, शब्द आदि, वह तो इन्द्रिय का निमित्त है, इसलिए इन्हें भी इन्द्रिय कहा है और यह खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय वर्तमान खण्ड से एक-एक विषय को जाने, वह तो आत्मा नहीं है। समझ में आया? आत्मा तो इस खण्ड इन्द्रिय से अधिक—भिन्न है। देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय। **'णाणसहावाधियं मुणदि आदम'** ज्ञानस्वभाव इस खण्ड इन्द्रिय के भाव से अधिक / पृथक् / भिन्न अतीन्द्रिय है। उसे यहाँ आत्मा कहा गया है। कहो, समझ में आया? वह आत्मा आत्मारूप से पर्यायरूप परिणमित हुआ सिद्ध, उसकी यह व्याख्या चलती है।

अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण (उसे) स्पर्शन, रसन, घ्राण,

चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियों के व्यापार नहीं हैं... अखण्ड ज्ञान का जहाँ व्यापार है, वहाँ खण्ड ज्ञान का व्यापार नहीं है। समझ में आया? यहाँ भी वास्तव में तो अखण्ड, खण्ड इन्द्रिय से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा है-ऐसा जहाँ भान हुआ, वह भी खण्ड इन्द्रिय से जानना उसे होता नहीं है। समझ में आया? क्योंकि उसे इन्द्रिय के विषय का भोग ही नहीं है आत्मा को। समझ में आया? यह कहाँ आया? अलिंगग्रहण का बारहवाँ बोल है न?

भगवान आत्मा को इन्द्रिय के विषय का भोग ही नहीं है। इन्द्रिय से जानना, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा वह नहीं है और इन्द्रिय से जाने, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा तो वह नहीं है परन्तु इन्द्रियों से जाने, ऐसा वह नहीं है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? और इन्द्रिय के विषय को भोगता नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। वह है न? अखण्डित है, इसलिए पाँच इन्द्रिय के व्यापार नहीं हैं।

आत्मा में इसका स्वभाव, इन्द्रिय के विषय को जानना या इन्द्रिय से जानना या इन्द्रिय के विषय को भोगना, इसके स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? समकित इन्द्रिय के विषय को भोगता नहीं है। ऐसा कहते हैं। भोगता नहीं, इसकी व्याख्या क्या? लो, अभिप्राय से निवृत्त नहीं हुआ, उसे ज्ञान नहीं। वह कहे, आस्रव से निवृत्त नहीं है, इसलिए ज्ञान नहीं है। ऐसा नहीं है। अभिप्राय में से निवृत्त है, इसलिए उसे... समझ में आया? आस्रव की निवृत्ति ही है। सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप के परिणाम मेरे हैं, ऐसा अभिप्राय छूट गया है। इसलिए वह आस्रवरहित ही है। आहाहा! गजब बात! इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि...

यहाँ तो इन्द्रिय के व्यापाररहित आत्मा सिद्ध, ऐसा ही यह आत्मा यहाँ है। जो अतीन्द्रिय आनन्द का भोग करनेवाला, ऐसा जो आत्मा, वह आत्मा इन्द्रिय के विषय को भोगे, ऐसा उसकी पर्याय में नहीं है। समझ में आया?

भगवान भोगते नहीं परन्तु यहाँ समकिती? आत्मा नहीं भोगता, इसका अर्थ कि आत्मा का जाननेवाला (भी नहीं भोगता)। आहाहा!

आत्मा इन्द्रिय के विषय को नहीं भोगता अथवा आत्मा को इन्द्रिय के विषयों का व्यापार नहीं है। ऐसा कहा न यहाँ। सिद्ध को इन्द्रिय के विषय का व्यापार नहीं है। इसका

अर्थ यह हुआ। इस भगवान आत्मा को ही इन्द्रिय के विषय का व्यापार नहीं है। इसका यह अर्थ हुआ कि जिसने आत्मा ऐसा जाना, ऐसे समकिती को भी इन्द्रिय के विषय का व्यापार नहीं है। उसे विषय का भोग नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

नियमसार है। **अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण...** यह टीका तो पद्मप्रभमलधारिदेव की है। **स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियों के व्यापार नहीं हैं...** सिद्ध को।

मुमुक्षु : द्रव्य को भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया न। अर्थ ही हुआ। द्रव्य को नहीं अर्थात् द्रव्यदृष्टिवन्त को भी नहीं। चिमनभाई! आहाहा! गजब मार्ग।

भगवान आत्मा निर्वाणस्वरूप विराजमान है। कहते हैं कि वह तो अखण्ड एक प्रदेशी ज्ञानस्वरूप है। उसे पाँच इन्द्रिय से जानना, ऐसा व्यापार सिद्ध को नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसका जो स्वभाव था, वह आ गया। तब अब इसका स्वभाव- त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वभाव अखण्ड एक ज्ञानस्वभाववाला है, खण्ड ज्ञानवाला नहीं है। खण्ड ज्ञान द्वारा इन्द्रिय का व्यापार द्रव्य को नहीं है, सिद्ध को नहीं है और द्रव्य की दृष्टि के जानकार समकिती को नहीं है। गजब बातें, भाई! ऐसे भोगे न! ऐसे छियानवें हजार स्त्रियाँ लगती हैं। आहाहा! अरे भाई! तुझे खबर नहीं है। राग का और हर्ष का जैसे आत्मा की पर्याय में अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता। वह तो सम्यक् चैतन्यमूर्ति अखण्ड प्रदेश ऐसा एक भगवान आत्मा, उसके आश्रय से निर्मल दशा हो, उसे यह कर्ता है और भोक्ता है। समझ में आया? आहाहा!

क्षायिक समकिती छह खण्ड का राज करे। सिद्ध राज करे तो समकिती राज करे। समझ में आया? आहाहा! गजब! '**णवि इन्द्रिय**' इसमें से सब निकाला है। इन्द्रिय सिद्ध को नहीं है अर्थात् कि आत्मा को इन्द्रिय नहीं है अर्थात् कि इन्द्रिय का व्यापार सिद्ध को नहीं है, अर्थात् कि आत्मा को इन्द्रिय का व्यापार नहीं है अर्थात् कि समकिती को भी इन्द्रिय का व्यापार नहीं है। आहाहा! समझ में आया? गजब वस्तु, भाई! एक बात की।

'**णवि इन्द्रिय**' अब '**णवि उवसग्गा**'। '**णवि इंद्रिय**' '**णवि उवसग्गा**' जहाँ शरीर का व्यापार नहीं है, उसे उपसर्ग ही नहीं। **देव, मानव, तिर्यंच और अचेतनकृत...** चार।

नारकी तो कहीं उपसर्ग करने आते नहीं। देव उपसर्ग करें-प्रतिकूलता। मनुष्य, पशु या अचेतन। उपसर्ग दीवार आ पड़े, चारों ओर ऐसे प्रतिकूल उपसर्ग सिद्ध को नहीं है। शरीर ही जहाँ इन्द्रिय का व्यापार नहीं, वहाँ फिर उपसर्ग कैसा? इसी प्रकार भगवान आत्मा में भी उपसर्ग नहीं है, उसी प्रकार धर्मी को भी उपसर्ग नहीं। लो! ऐई! मुनि को उपसर्ग होता है न यह? सिंहनी खाती है, यह खाता है। खाता किसे है? और खाता कौन है? उसके मुँह में आत्मा के प्रदेश आते हैं। समझ में आया?

धर्मी तो अपने आनन्द के वेदन को अनुभव करता है। उसमें उपसर्ग कैसा? आहाहा! समझ में आया? उपसर्ग लगे उसे... योग तो भले उपसर्ग का हो, उसे उपसर्ग लगे तो दु:ख हो और दु:ख तो विभाव है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं और विभाव में समकिती आता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपना स्वरूप ही चैतन्य आनन्दमय, ऐसा जहाँ है, ऐसा अस्तिभाव अनुभव में स्वीकार किया, उसे कहते हैं कि उपसर्ग नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? ऐसी कर्म की चीज़ है। मामूली साधारण बात करे और धर्म हो गया, यह धर्म हो गया, यह अमुक हो गया। समझ में आया? आहाहा!

और वे सिद्धभगवान कैसे हैं? **क्षायिकज्ञानमय और यथाख्यातचारित्रमय होने के कारण...** दो भेदवाला मोह नहीं है, ऐसा कहना है। **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ऐसे भेदवाला दो प्रकार का मोहनीय नहीं है;...** सिद्ध को मोह कैसा? इसी प्रकार द्रव्य को मोह कैसा? आहाहा! गजब शैली! जैसे सिद्ध भगवान को इन्द्रियाँ नहीं हैं, इसलिए उपसर्ग नहीं है, मोह नहीं है। मोह नहीं है, ऐसा हुआ कैसे? कि उनके द्रव्यस्वभाव में मोह नहीं था, इसलिए मोहरहित हो गये। और आत्मा भी अभी मोहरहित है तो मोहरहित होकर सिद्ध होगा और आत्मा की दृष्टि हुई, वह जीव भी मोहरहित ही है। कहो, समझ में आया?

साधक को चौथे गुणस्थान से... आहाहा! क्योंकि मोह तो एक दोष है। कर्म तो एक ओर रखो। दोष भी नहीं। आहाहा! सिद्ध को नहीं। उसी तरह द्रव्य में नहीं, इसी तरह द्रव्यदृष्टिवन्त को नहीं। समझ में आया? देखो! ऐसा धर्म है। आहाहा! वीतरागीस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसे वीतरागता सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि प्रगट होने पर, धर्म प्रगट होने

पर उसे अधर्म ऐसा मोह कहाँ से होगा ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दो **भेदवाला दो प्रकार का मोहनीय नहीं है;...** विस्मय। आहाहा!

बाह्य प्रपंच से विमुख होने के कारण (उसे) विस्मय नहीं है;... सिद्ध को विस्मय क्या ? पूर्ण केवलज्ञान से पूर्ण जानना-देखना एक समय में परिणमन हो गया। यह... यह... ऐसा विस्मय नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा के स्वभाव में भी विस्मय नहीं है। नहीं था तब तो हुआ। आहाहा! समझ में आया ? और इस आत्मा का स्वीकार करनेवाला, उसका ऐसा अस्तित्व है। शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव, ऐसा अनुभव करनेवाला, माननेवाला, जाननेवाला साधक, उसे विस्मय नहीं है। समझ में आया ? उसमें तो विकल्प है। उसमें नहीं, उसे नहीं। वह तो पर है। आहाहा! समझ में आया ? विस्मय नहीं है। ऐसा लगे, कुछ नया लगे। नया! आहाहा! क्या है ? विस्मयता ऐसे तुझे पर की कुछ अद्भुतता लगे तो वह तो राग है, वह विकल्प है। ऐसी विस्मयता सिद्ध को नहीं है परन्तु सिद्ध को ऐसी विस्मयता नहीं है, (ऐसा) हुआ कैसे ? वस्तु में भी विस्मयता नहीं है। आहाहा! विस्मय आश्चर्यकारी राग होना... आहाहा! ऐसा! समझ में आया ? इतने पैसे पैदा हो गये! छोटी उम्र का और पाँच-दस करोड़, पच्चीस करोड़, अरब, दो अरब। परन्तु अब क्या है ? समझ में आया ? विस्मय नहीं है।

तथा एक ओर भगवान का शरीर देखकर देखने के लिये इन्द्र हजार नेत्र बनाता है, ऐसा शास्त्र में आता है। लो, ऐसा शरीर सुन्दर-रूपवान है, सब कोमल अवयव और ऐसे एक-दो आँखों से देखने में तृप्त (नहीं) होते। हजार नेत्र (बनाता है) और है क्षायिक समकिती। तो भी उसे पर्याय में विस्मय नहीं है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया ? द्रव्य में तो नहीं, परन्तु द्रव्य में नहीं है, ऐसा जिसने द्रव्य का भान किया है, उसे भी उसकी पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! गजब बात है। कहो, समझ में आया इसमें ? लाख आमदनी हो महीने की, दो लाख आमदनी हो, पाँच लाख आमदनी हो, आहाहा! लड़का गजब! गजब जगा हो, कहे। ऐ... पोपटभाई!

मुमुक्षु : ....लड़का...

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का लड़के का भी ऐसा कि...

भाई! यह उसका विस्मयपना होना, वह तो वस्तु के स्वरूप में नहीं है न,

भगवान! होवे तो सिद्ध क्यों विस्मयरहित हैं? आहाहा! ....भाई! नागनेश के घर में करोड़पति के पुत्र (होवे तो) विस्मय नहीं होगा? होता है या नहीं कुछ? ऐई! मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : तत्त्व नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह क्या? अद्भुतात् अद्भुतम् तो इसका अपना स्वरूप है। समझ में आया? उसे किसी चीज़ की अद्भुतता नहीं दिखती। आहाहा! देखो! यह वीतरागीमार्ग। आहाहा! समझ में आया? **विस्मय नहीं है; नित्य-प्रकटित शुद्धज्ञानस्वरूप होने के कारण (उसे) निद्रा नहीं है;...** भगवान को निद्रा नहीं है। आहाहा! नित्य प्रगटित। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप से नित्य प्रगट हुआ है। ऐसा शुद्ध ज्ञानस्वरूप होने के कारण उसे निद्रा नहीं है। आहाहा! निद्रा नहीं है, ऊंघ नहीं है।

मुमुक्षु : वहाँ ऊपर कर्म लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म है तो भी बाधा नहीं है। कर्म और कर्म का भाव दोनों। कहो, समझ में आया? निद्रा नहीं है।

वस्तु आत्मद्रव्य में भी निद्रा नहीं है और आत्मद्रव्य की दृष्टिवन्त को निद्रा नहीं है। आहाहा! ऐई! निद्रा के प्रमादभाव से समकिती मुक्त है। ऐई! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द के सत्रूप से विराजमान, ऐसी चीज़ में निद्रा नहीं है। उसकी पर्याय में प्राप्त हुए ऐसे सिद्ध को निद्रा नहीं है और ऐसी द्रव्यदृष्टि जिसे प्राप्त हुई, उसे निद्रा का अभाव है। साधु का आता है न? पिछले पहर में जरा। ऐई!.... देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार बतलाया है। गजब बात, भाई! वीतराग के मार्ग की शैली गजब है। वस्तु के स्वभाव की शैली है न! स्वभाववादियों का यह कथन है।

मुमुक्षु : पहले आ गया था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आ गया न, वहाँ कहा, विभाववादियों तुम्हारा मान्य नहीं है। यह ज्ञान जाने और दर्शन देखे। आत्मा साथ ही जाने-देखे, ऐसी सब विभाववादियों की बात है। हम तो एक ही अखण्डानन्द भगवान, पूर्णानन्द प्रभु चैतन्य का पिण्ड प्रभु,

अनाकुल आनन्द का अकेला समुद्र, ऐसी वस्तु में निद्रा कैसी ? और ऐसी जहाँ पर्याय पूर्ण प्रगट हो गयी, उसे कैसी ? और पूर्ण हुई नहीं परन्तु भान में आया... आहाहा ! कहो, नेमिदासभाई ! ऐसा है यह।

निद्रा नहीं है;... यहाँ तो समकिती सोता है न ? दो घण्टे, चार-चार घण्टे सोता है। आठ-आठ घण्टे। मुनि भी (रात्रि के) अन्तिम (पहर) में जरा सा... यह तो व्यवहार होता है, वह जाननेयोग्य है। उसके अस्तित्व में है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐई.. ! ...भाई ! ऐसा मार्ग है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? **असातावेदनीय कर्म को निर्मूल कर देने के कारण...** भगवान को, असाता वेदनीयकर्म के निमित्त से क्षुधा-तृषा हो, उस असाता वेदनीयकर्म का मूल में से नाश किया होने से **(उसे) क्षुधा और तृषा नहीं है।** आहाहा ! लो ! सिद्ध भगवान को क्षुधा-तृषा नहीं है। अब यहाँ केवली को तो क्षुधा-तृषा सिद्ध करते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि समकिती को क्षुधा-तृषा नहीं है। सुन न ! वह तो ज्ञान में ज्ञेय—जाननेयोग्य है। आहाहा ! जठर में क्षुधादि हों, वह तो पर है, ऐसा जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान। आहाहा !

कहते हैं, क्षुधा-तृषा नहीं तो फिर समकिती रोटी नहीं खाता ? ऐ... ! अज्ञानी भी नहीं खाता, परन्तु उसे राग होता है न ? परन्तु यह राग है, उसका अस्तित्व स्वीकार करनेवाले को राग है। राग का अस्तित्व मुझमें नहीं है; मैं तो वीतरागमूर्ति चिदानन्द हूँ। आहाहा ! ऐसी स्वीकार करनेवाले को क्षुधा-तृषा की इच्छा ही नहीं है। यह तो कहा नहीं ? निर्जरा अधिकार में। आहार की इच्छा नहीं, पानी की इच्छा नहीं। मुनि को नहीं, यह तो उसका अर्थ। आहाहा ! गजब शैली है। चारों ओर से देखो तो।

भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का सागर अस्ति वस्तु है न ? पदार्थ है न ? पदार्थ है तो उसका स्वभाव परिपूर्ण होगा न। पदार्थ एक और परिपूर्ण (तथा) उसका स्वभाव अनन्त ज्ञानादि परिपूर्ण और एक अभेद। ऐसे आत्मा में क्षुधा-तृषा नहीं है। सिद्ध को नहीं, परमात्मा हुए उन्हें नहीं। तो केवली को भी नहीं। तब कहते हैं, भाई ! सिद्ध को और केवली को लिखा है तुम्हारे में। ग्यारह परीषह तो फिर तुम्हारे करना पड़ा होगा। वह तो उपचार से। ऐई. !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....यह लोगों ने विरोध करने को लिखा है। उन्होंने ग्यारह लिखा न, और कहते हैं कि वह तो उपचारमात्र है। ऐसा वापस अर्थ किया। हमारे पण्डितजी ने अर्थ किया न, सब पंचास्तिकाय के ? करके फिर मिटा डाला बाद में, ऐसा लिखा है। ऐसा वे लोग कहते हैं, हों! वे लोग कहते हैं। अरे! सुन न! यह तो उसका स्पष्टीकरण किया है। उसमें क्या कहना चाहते हैं, उसे स्पष्ट किया है। जो सामान्यरूप से हो, उसे विशेषरूप से स्पष्ट होता है। उसमें क्या है ? समझ में आया ?

धर्मधारा। जिसे धर्म पूरा हो गया, ऐसे सिद्ध। उन्हें क्षुधा-तृषा नहीं है। केवली को भी नहीं है, वस्तु में नहीं है, ऐसा ज्ञानधारा में यह कहा। क्षुधा-तृषा ज्ञानधारा में साथ में नहीं आती। आहाहा! कहो, समझ में आया ? कहो, हीराभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : साधक जीव को...

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक, सिद्ध और द्रव्य, तीनों हो गये। द्रव्य में होवे तो पर्याय में सिद्ध को रहे। इसी प्रकार द्रव्य में होवे तो समकिती को पर्याय में रहे। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा भगवान अद्भुतात अद्भुत आनन्द और ज्ञान का विलासी आत्मा, उसे क्षुधा-तृषा कैसी ? आहाहा! समझ में आया ?

उस परम ब्रह्म में (-परमात्मतत्त्व में) सदा ब्रह्म (निर्वाण) है। ऐसे आत्मा में तो सदा ही निर्वाण ही है, कहते हैं। सिद्धपद की पर्याय में सदा ही निर्वाण है। उस द्रव्य में भी सदा निर्वाण है। आहाहा! और समकिती को भी मुक्तपना द्रव्य का भासित हुआ है, इसलिए उसे दृष्टि में सदा निर्वाण—मुक्तपना ही है। आहाहा! व्यवहार से मुक्त है, निर्वाण पूर्ण है यह। मुक्तस्वरूप भगवान है, उसके मुक्तस्वरूप की दृष्टिवन्त को भी मुक्तस्वरूप ही है। समझ में आया ? यह सब आठ कर्म और उसके राग के सब भरे हैं न ? वह सब व्यवहार जाननेयोग्य है। मुझमें है, ऐसे खतौनी योग्य नहीं है। आहाहा!

उस परम ब्रह्म में (-परमात्मतत्त्व में) सदा ब्रह्म (निर्वाण) है। ऐसे आत्मा में ही निर्वाण है। अन्यत्र निर्वाण बाह्य अलग है, (ऐसा नहीं है)। निर्वाण और आत्मा, सिद्ध और आत्मा... आगे कहेंगे, सिद्ध और निर्वाण दोनों एक ही है। समझ में आया ? आगे गाथा कहेंगे न अन्तिम। बाद की। एक ही बात है। निर्वाण कुछ नाम दूसरा सिद्ध पड़ा, इसलिए नाम के लिये ऐसा कुछ नहीं है। पूर्ण शान्ति... पूर्ण शान्ति... पूर्ण शान्ति...

आहाहा! यह सब अरबोंपति अमेरिकावाले बेचारे थक गये कि इसमें कहीं सुख नहीं लगता।

मुमुक्षु : अरबोंपति नहीं है और अरबोंपति माने तो फिर किसका दुःख?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा कि ऐसे बड़े बँगले और ऐसा है। ओहोहो! कहीं सुख नहीं है। शान्ति या विश्राम दिखाई दे, ऐसा नहीं है। यह तो श्वान की तरह यह... बड़ा बँगला बनाया पाँच करोड़ का। नीचे और ऊपर चढ़े। क्या कहलाती है वह? लिफ्ट। ऐसे ऊपर चढ़े। कौआ उड़ता है, वैसे उड़े। यह बैठकर उड़े। परन्तु क्या है? आहाहा! वहाँ जाए, नीचे उतरे। लो, ऐसा क्या कहलाता है दीवानपना? दीवानखाना। वहाँ दीवानखाना होता है। आठ-दस बड़े बँगले। ऐ...! पोपटभाई! ऐसे मकान हैं या नहीं? हैं या नहीं तुम्हारे? नये हुए, उन्हें देखना। चालीस लाख का नया बनाया है न? उसे देखा? ऐसे ठीक। ऐसा लगे... कपड़े-बपड़े पहनाकर। मानो कोई ऊपर से-स्वर्ग में से उतरा। धूल में भी कहीं नहीं है। आहाहा! अरे! सुख के सागर के सन्मुख न देखकर, यह पर के सामने देखकर विस्मय और प्रसन्नता होती है, वह आत्मा का अनादर करता है। आहाहा! समझ में आया?

उस परम ब्रह्म में (-परमात्मतत्त्व में) सदा ब्रह्म (निर्वाण) है। द्रव्यरूप से वस्तु आत्मा भी सदा ब्रह्म (निर्वाण) है। द्रव्य आत्मा का द्रव्य जो वस्तु है, वह मुक्तस्वरूप ही है। मुक्तस्वरूप है तो पर्याय में मुक्त होता है। समझ में आया? तू है मोक्षस्वरूप, आता है। अपने कलश में आता है। मुक्तएव-कलश में आता है। सम्यग्दृष्टि मुक्तएव। मुक्त है, व्यवहार से मुक्त है, इसलिए फिर व्यवहार उसमें नहीं रहा। अर्थात् क्या रहा? राग से मुक्त है। आहाहा! गजब बात है, भाई!

जिसने धर्मी को धारण किया, धर्मी ऐसा भगवान आत्मा दृष्टि में, ज्ञान में, अनुभव में धारण किया, उसमें कहते हैं कि राग और संसार का करना, टिकना है नहीं। आहाहा! निर्वाण। वह आता है। समकित हुआ, उसकी मुक्ति हुई, ऐसा भी आता है। मुक्त हुआ। एक पर्याय में थोड़ी बाकी है। उस पूर्ण मुक्तस्वरूप को अनुभव में लिया, उसने पूर्ण आत्मा को श्रद्धा से-ज्ञान से अधिकार में किया। वह पर्याय थोड़ी बाहर... समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा की जिसे खबर नहीं, ऐसे आत्मा की जिसे श्रद्धा और पहिचान नहीं, वह चाहे जैसा बड़ा कहलाता हो, वह सब खोटा... आहाहा!

इसी प्रकार (श्री योगीनद्रदेवकृत) अमृताशीति में (५८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

ज्वर–जनन–जराणां वेदना यत्र नास्ति,
परिभवति न मृत्युर्नागतिर्नो गतिर्वा।
तदतिविशदचित्तैर्लभ्यतेऽङ्गेऽपि तत्त्वं,
गुणगुरुगुरुपादाम्भोजसेवाप्रसादात् ।।

सब 'ज–ज' डाले हैं। इस शरीर में भी ऐसा ही भगवान है, ऐसा कहते हैं। जिस तत्त्व में ज्वर नहीं, उसे टालना नहीं उसमें। आत्मभगवान, ज्ञानानन्द भगवान में बुखार कैसा? और जहाँ जन्म नहीं। सिद्ध को बुखार और जन्म नहीं, इसी तरह आत्मा को भी बुखार और जन्म नहीं। आहाहा! **जरा की वेदना नहीं है,...** वृद्धावस्था होती है, उम्र होती है, चमड़ी ढ़ीली पड़ती है, उठा नहीं जाता, मुँह में से पानी झरता है, आँख में झिपड़ा बहता है, कान में बहरापन होता है। आहाहा! ऐसी जरा की वेदना नहीं है। वृद्धावस्था की वेदना सिद्ध परमात्मा अशरीरी को नहीं है। इसी प्रकार इस भगवान आत्मा में भी जरा नहीं है। वह तो जड़ की अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? वृद्धावस्था तो देह की है, आत्मा को है नहीं। सिद्ध को नहीं है, वैसे ही आत्मा को भी नहीं है। सत्य होगा? सबको हाँ कराते हैं। परन्तु तू न्याय तो देख तेरी अस्ति में। तू कोई अस्तिवाला, सत्तावाला पदार्थ है या नहीं? उस पदार्थ में क्या उसका स्वभाव है? उसका स्वभाव ज्ञान है, आनन्द है, शान्ति है, स्वच्छता है, प्रभुता है, अनीन्द्रियता—ऐसा उसका स्वभाव परिपूर्ण है। ऐसे परिपूर्ण स्वभाव में यह कहाँ? ऐसे भगवान में यह कैसा? आहाहा!

जिस प्रकार पानी में तेल पड़ा होने पर भी तेल तो ऊपर ही रहता है। अन्दर प्रवेश करता है? पानी तो स्वच्छ ही रहता है। ऊपर तेल की बूँद डालो तो भी ऊपर रहता है। पानी में प्रवेश नहीं करता। उसी प्रकार अनन्त बल का धनी भगवान पानीवाला, तेजवाला, उसमें यह संसार और रागादि प्रवेश नहीं करते। आहाहा! समझ में आया? इतना बड़ा आत्मा, इसे जँचता नहीं है। बीड़ी बिना चलता नहीं, तम्बाकू बिना चलता नहीं। जरा कुछ मान–अपमान में एक नाम से बुलावे, वहाँ शिथिल पड़ जाता है। अमुक भाई क्यों नहीं कहा? ऐसा क्यों कहा? पोपटभाई क्यों नहीं कहा? ऐसा क्यों नहीं कहा? पोपट! यह

क्या है ? इसमें मेरी हीनता क्यों दिखायी ? कि भाषा में महत्ता (नहीं रखी)। उसकी माँ पोपट कहे तो बाधा नहीं। नहीं ? परन्तु यदि जरा सा उसे... ऐसा यदि कोई कहे... (तो) यह क्या ? परन्तु कहाँ है तू पोपट और तू कहाँ है ?... कुछ है नहीं। आहाहा ! तुझमें जरा-फरा है नहीं ? शरीर ही नहीं है। फिर उसे शरीर की अवस्था कहाँ से लाना अन्दर ? ऐसा कहते हैं। आहाहा !

मृत्यु नहीं है,... उसमें जन्म डाला था, इसलिए मृत्यु नहीं। मरे कौन ? सिद्ध मरे ? सूर्य मरे ? आता है न ? इस सूर्य का किसी ने स्नान किया ? शाम को अस्त हो जाता है तो मर गया लगता है सूर्य, ऐसा कहा ? शाम को अस्त हो जाता है तो मर गया सूर्य। करो स्नान। यह जहाँ शरीर छूटे तो कहे, मर गया। करो स्नान। ऐसा है। मरे कौन ? समझ में आया ? सिद्ध मरते नहीं, द्रव्य मरता नहीं और द्रव्य की पर्यायवाला मरता नहीं। जीवितज्योति चैतन्यभगवान उसे मरना क्या ? आहाहा ! समझ में आया ?

उसे **गति या अगति नहीं है,...** गति अर्थात् जाना और अगति अर्थात् गति में से वापस फिरना। ऐसा उन्हें नहीं है। सिद्ध को हो गयी, वह हो गयी गति, अब है नहीं। अब कहीं जाना-आना नहीं है। आहाहा ! इसी प्रकार इस आत्मा में भी गति-अगति। कहीं कोई गति में गया और उस गति में से आया, ऐसा आत्मा में नहीं है। ऐसे आत्मा को स्वीकार करनेवाले धर्मी को भी गति-अगति नहीं है। मनुष्यगति में समकिती है ? नहीं। देवलोक में जाता है ? नहीं। गजब ! भगवान चैतन्यप्रभु अनाकुल आनन्द का स्वरूप जिसका, उसमें जहाँ दृष्टि स्थापित हुई, वह कहाँ गति करे और कहाँ गति में जाए वापस ? जहाँ है, वहाँ है। आहाहा ! समझ में आया ?

उस तत्त्व को अति निर्मल चित्तवाले पुरुष,... देखो ! ऐसे तत्त्व को अतिनिर्मल चित्तवाले पुरुष **शरीर में स्थित होने पर भी,...** है न ? '**ऽङ्गेऽपि**' श्लोक में था। तीसरे पद में। क्या कहना ? और कहते हैं कि शरीर में नहीं। समझाना किस प्रकार ? आहाहा ! **शरीर में स्थित होने पर...** अर्थात् क्षेत्र में ऐसा लगता है कि मानो इस शरीर में हैं। उसमें रहे होने पर भी **गुण में बड़े ऐसे गुरु के चरणकमल की सेवा के प्रसाद से...** आहाहा ! सन्त, महन्त, धर्मात्मा गुरु जिन्हें आत्मा की गुरुता प्रगट हुई है। जिन्हें अन्तर में भगवान ऐसा गुरु ज्ञानानन्द से भरपूर, ऐसी दशा में गुरु की गुरुता प्रगट हुई है। आहाहा ! गुरु की महत्ता

प्रगट हुई है। उस पदवी की महत्ता नहीं कहते? जरा सा दे वहाँ... आहाहा! क्या कहलाता है तुम्हारे? जे.टी.। पदवी आती है न जे.टी. की कि आहाहा! बहुत बड़ा है। उसे यह पदवी दी। उसे यह पदवी दी। पदवी ही कैसी? वहाँ कहाँ घुस गया था उस पदवी में? आहाहा!

कहते हैं **गुण में बड़े ऐसे गुरु के...** भाषा-व्याख्या ऐसी की है। **गुण में बड़े ऐसे गुरु...** अपने आत्मा की आनन्द की, ज्ञान की, धर्म की दशा-परिणति जिसे बहुत ऊँची हो गयी है, ऐसे गुण में बड़े। गुण शब्द से (आशय) उसकी पर्याय। वह तो गुण है, उसकी निर्मल पर्याय में स्वयं से ही बड़े अधिक हैं। **ऐसे गुरु के चरणकमल की सेवा के प्रसाद से...** क्योंकि ऐसे गुरु आत्मा की बात करते हैं। ऐसा आत्मा तू है, उसे मान, अनुभव कर। उनके उपदेश में यह होता है, कहते हैं।

मुमुक्षु : मीठाभाई की बात आयी, उनके जैसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ आयी है इसमें? क्या कहा?

मुमुक्षु : मीठाभाई की बात तो उड़ा देने की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ऐसा करके उड़ा देने की। आहाहा!

महाप्रभु, ऐसी जिसे आत्मा की दशा में निर्मलता, जिसे गुरु अर्थात् बढ़ गयी है। उस पदवी में जो आये, गुण में गुरु हुए, उस पदवी में आये हुए, उनके चरणकमल की सेवा। लो! चरण अर्थात् पैर दबाना होगा? पाठ तो यह है। उनके समीप में उनने कहा, वैसा माना। समझ में आया? आहाहा! कहा न? कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा), हमारे गुरु अन्तर्निमग्न थे। आहाहा! उन्होंने हमारे ऊपर मेहरबानी की। प्रसादी, अनुग्रह करके प्रसादी दी है। समझ में आया? सत्यनारायण की कथा में आता है न? अन्त में क्या कहलाता है वह? प्रसादी। प्रसादी नहीं, दूसरा कुछ कहते हैं। प्रसाद। वह प्रसाद नहीं लिया तो... ऐसा उसमें आता है। अर्थात् क्या? वे सुननेवाले हों, वे ठेठ तक बैठें, ऐसे हेतु से। सत्यनारायण की कथा आती है न? हमनें सुनी है। हमारे पालेज में। ब्राह्मण बोलते हैं। ऐसा कि यह प्रसाद लिये बिना अमुक बाई ने... कुछ नाम आता अवश्य है। लीलावती या ऐसा नाम। मैंने तो बहुत वर्ष पहले सुना था। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। पालेज में सुना था। पालेज में। उसमें एक लड़का... उसने करायी थी सत्यनारायण

की कथा। उसमें इस प्रकार प्रसाद लिये बिना गयी (तो) उसका पति मर गया, उसका ऐसा हुआ, वैसा हुआ। जहाज डूबा, जहाज डूब गया। ऐसे गप्प-गप्प। वह प्रसादी यह। धर्मात्मा ने आत्मा की आनन्द की प्रसादी की है और उसे सुनकर धारण नहीं की, उसका जहाज डूबा, ऐसा कहते हैं। वह-धूल का यहाँ क्या काम? सत्यनारायण की कथा सुनी है न? वहाँ नागनेश में आती होगी। आहाहा! नारायण तो यह त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं सत्यनारायण, नर का नारायण हो, ऐसी इसमें ताकत है। ऐसे सत्यनारायण की कथा सुने बिना कोरा जाए तो उसका जहाज डूबे, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बराबर फिट हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उस दिन सुनी हुई। जहाज डूबा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पत्ता हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्ता हो गया। जहाज में माल लेकर भरा था, वह पत्ता हो गया।

मुमुक्षु : क्या भरा था, उसका पत्ता हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : माल। माल भरा, उसका पत्ता हो गया। ऐई! देवीलालजी! सुना नहीं? कथा तो सुनने तो गये होंगे। किसी वैष्णव में होती होगी। आहाहा!

ऐसे गुरु के चरणकमल की सेवा के प्रसाद से... लो! इस शरीर में रहे परन्तु भगवान देव-गुरु की कृपा से और गुरु की सेवा से। आहाहा! लो! ठीक! उसे अनुभव... बापू! प्रभु! तेरा ऐसा आत्मा है। सिद्धसमान ही तेरा स्वरूप है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' यह सिद्ध की व्याख्या आती है, परन्तु तू सिद्धसमान ही है, ऐसा करके शरीर में अनुभव करता है। उसे सिद्धसमान का आनन्द आता है। भले थोड़ा हो। उसे यहाँ धर्मी कहा जाता है। टीका कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)